

Hindi / English / Gujarati

# श्री पाण्डव गीता



# निवेदन

भारतीय वाङ्मयमें मानव-कल्याणके लिये गीताका महत्त्वपूर्ण योगदान है। श्रीमद्भगवद्गीताके साथ-साथ अनेक नामोंसे गीता हमें उपलब्ध होती है। यहाँ हम 'पाण्डवगीता' और 'हंसगीता' का प्रकाशन पाठकोंके लिये कर रहे हैं।

'पाण्डवगीता' भक्ति-मार्गका एक अनुपम संकलन है, जिसमें पाँचों पाण्डव, व्यास आदि ऋषि-महर्षियों तथा तत्कालीन महापुरुषोंकी वाणी भगवान् श्रीनारायणकी स्तुतिके रूपमें प्रस्तुत की गयी है। ये स्तुतियाँ एक-एक श्लोकमें ही ग्रथित हैं, परंतु इतनी मार्मिक और हृदयस्पर्शी हैं कि इन्हें पढ़नेके समय पाठकके हृदयमें स्वाभाविकरूपसे भक्ति-सरिता प्रवाहित होने लगती है। यही कारण है कि कई वैष्णव-भक्तोंमें प्रतिदिन नियमपूर्वक इसके पाठ करनेकी परम्परा है। इसे 'प्रपन्नगीता' भी कहा जाता है।

इस ग्रन्थकी विशेषता यह है कि इसमें सर्वप्रथम प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यासदेव, अम्बरीष, शुकदेव, शौनक, भीष्म, दाल्भ्य मुनि,

राजर्षि रुक्माङ्गद, अर्जुन, महर्षि वसिष्ठ तथा विभीषण आदि महानुभावोंको परम भागवतके रूपमें नमस्कार किया गया है। इसके साथ ही इस भक्ति-सरिताके प्रमुख इष्ट हैं- आनन्दकन्द ब्रह्माण्डनायक परमानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र। इनकी स्तुति पाँचों पाण्डवोंके अतिरिक्त माता कुन्ती, माद्री, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा तथा ब्रह्मा, देवराज इन्द्र, धन्वन्तरि, पराशर, पुलस्त्य, व्यास, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर, उद्धव, अक्रूर, कर्ण, द्रुपद तथा अभिमन्यु आदि महानुभावोंने अत्यन्त भक्ति भावसे की है। मुकुन्दमाधव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका सतत स्मरण और उनके नामकी महिमाका वर्णन पूर्ण समारोहपूर्वक इन श्लोकोंमें हुआ है।

इसी प्रकार 'हंसगीता' भी यहाँ प्रस्तुत है, जो महाभारत से उद्धृत की गयी है। शरशय्यापर आसीन भीष्मजीके द्वारा धर्मराज युधिष्ठिरको मोक्षधर्मपर्वके अन्तर्गत हंसगीताका सदुपदेश प्रदान किया गया है, जो बड़े महत्त्वका है। आशा है भक्तजन इसके पठन, स्वाध्याय एवं मननसे लाभान्वित होंगे।

॥ श्रीहरिः ॥

# पाण्डवगीता

पाण्डव उवाच

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक-  
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान् ।  
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्  
पुण्यानिमान् परमभागवतान् नमामि ॥ १ ॥

पाण्डवोंने कहा-

प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अम्बरीष, शुकदेव, शौनक,  
भीष्म, दाल्भ्य, रुक्माङ्गद, अर्जुन (सहस्त्रार्जुन), वसिष्ठ और विभीषण  
आदि-इन पुण्य प्रदान करनेवाले परम भक्तोंको हम नमस्कार करते हैं  
॥ १ ॥

लोमहर्षण उवाच

धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन  
पापं प्रणश्यति वृकोदरकीर्तनेन ।  
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन

माद्रीसुतौ कथयत्तां न भवन्ति रोगाः ॥ २ ॥

लोमहर्षणने कहा-

युधिष्ठिरके (नाम, गुण, लीला और धामका) कीर्तन करनेसे धर्मकी वृद्धि होती है, (इसी प्रकार) भीमसेनके कीर्तनसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, अर्जुनके कीर्तनसे शत्रुओंका नाश होता है और माद्रीपुत्र नकुल तथा सहदेवके कीर्तनसे रोग नहीं होते ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

ये मानवा विगतरागपराऽपरज्ञा  
नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति ।  
ध्यानेन तेन हतकिल्बिषचेतनास्ते मातुः  
पयोधररसं न पुनः पिबन्ति ॥ ३ ॥

ब्रह्माजीने कहा-

जो मनुष्य रागसे रहित होकर पर (परब्रह्म) और अपर (अपरब्रह्म) तत्त्वको जानकर देवताओंके उद्भावक नारायणका निरन्तर स्मरण करते रहते हैं और भगवान्के ध्यानसे अपने अन्तःकरणके मलको धो चुके हैं, वे फिर माताका दूध नहीं पीते अर्थात् उनका फिर जन्म नहीं होता, वे मुक्त हो जाते हैं ॥ ३ ॥

### इन्द्र उवाच

नारायणो नाम नरो नराणां प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम् ।

अनेकजन्मार्जितपापसंचयं हरत्यशेषं स्मृतमात्र एव यः ॥ ४ ॥

इन्द्रने कहा-

पृथ्वीपर मनुष्योंमें नररूपसे अवतरित भगवान् नारायण 'चौर' रूपसे विख्यात हैं। भगवान्को 'चौर' इसलिये कहा गया है कि ये (मनुष्यके द्वारा) अनेक जन्मोंमें कमाये गये पापसमूहका स्मरण करते ही निःशेष हरण कर लेते हैं अर्थात् कोई चोर चुराते समय कुछ तो छोड़ता है, किंतु भगवान् उसके पापके एक कणको भी नहीं छोड़ते अर्थात् पापको जड़से समाप्त कर देते हैं ॥ ४ ॥

### युधिष्ठिर उवाच

मेघश्यामं पीतकौशेयवासं श्रीवत्साङ्ग कौस्तुभोद्भासिताङ्गम् ।

पुण्योपेतं पुण्डरीकायताक्षं विष्णुं वन्दे सर्वलोकैकनाथम् ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरने कहा-

मैं सभी लोकोंके एकमात्र स्वामी भगवान् विष्णुकी वन्दना करता हूँ, जो मेघकी तरह श्याम वर्णवाले हैं, पीले रेशमी वस्त्र पहने हुए हैं। उनका वक्षःस्थल श्रीवत्ससे चिह्नित है तथा कौस्तुभमणिकी प्रभासे सारे अङ्ग

देदीप्यमान हैं। वे पुण्यस्वरूप हैं और उनके नेत्र कमलकी तरह विशाल हैं ॥ ५॥

### भीमसेन उवाच

जलौघमग्ना सचराऽचरा धरा विषाणकोट्याऽखिलविश्वमूर्तिना ।  
समुद्धता येन वराहरूपिणा स मे स्वयम्भूर्भगवान् प्रसीदतु ॥ ६ ॥  
भीमसेनने कहा-

सम्पूर्ण विश्वका प्रत्येक रूप भगवान्का ही रूप है, फिर भी उन्होंने वराहका विशेष रूप धारण कर चर और अचरसहित जलराशिमें डूबी हुई सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने दाढ़के अग्रभागसे निकालकर अपनी कक्षामें स्थापित किया था, वे स्वयम्भू भगवान् मुझपर प्रसन्न हों ॥ ६ ॥

### अर्जुन उवाच

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमव्ययं विभुं प्रभुं भावितविश्वभावनम् ।  
त्रैलोक्यविस्तारविचारकारकं हरि प्रपन्नोऽस्मि गति महात्मनाम् ॥ ७ ॥  
अर्जुनने कहा-

मैं हरिकी शरणमें हूँ। वे हरि अचिन्त्य हैं, अव्यक्त हैं, अनन्त हैं, अव्यय हैं, व्यापक हैं, प्रभु हैं, विश्वको उत्पन्न कर उसका संरक्षण- पालन करते

हैं, तीनों लोकोंके विस्तारके लिये विचार किया करते हैं और वे ही भगवान् महापुरुषोंके आश्रय हैं ॥७॥

नकुल उवाच

यदि गमनमधस्तात् कालपाशानुबन्धाद्  
यदि च कुलविहीने जायते पक्षिकीटे ।  
कृमिशतमपि गत्वा जायते चान्तरात्मा  
मम भवतु हृदिस्था केशवे भक्तिरेका ॥ ८ ॥

नकुलने कहा-

कालके जालमें बँधकर मेरी अन्तरात्मा (जरायुज आदि ऊँची योनिकी अपेक्षा अण्डज आदि) नीची तथा कुलविहीन पक्षी, कीट आदि योनिमें उत्पन्न हो अथवा सैकड़ों कीड़ेकी योनिमें उत्पन्न हो तो भी हृदयमें स्थित भगवान् केशवके प्रति मेरी एकनिष्ठ भक्ति बनी रहे ॥ ८ ॥

सहदेव उवाच

तस्य यज्ञवराहस्य विष्णोरतुलतेजसः ।  
प्रणामं ये प्रकुर्वन्ति तेषामपि नमो नमः ॥ ९ ॥

सहदेवने कहा-



जो लोग असीम तेजस्वी भगवान् विष्णुके यज्ञरूप वराहावतारको प्रणाम करते हैं, वराहावतारके साथ ही उन प्रणाम करनेवालोंको भी मेरा बार-बार प्रणाम है ॥ ९ ॥

**कुन्त्युवाच**

स्वकर्मफलनिर्दिष्टां यां यां योनिं ब्रजाम्यहम् ।

तस्यां तस्यां हृषीकेश त्वयि भक्तिर्दृढाऽस्तु मे ॥ १० ॥

कुन्तीने कहा-

हे हृषीकेशभगवान् ! अपने कर्मके फलके अधीन होकर जिस-जिस योनिमें मैं जन्म लूँ, उस-उस योनिमें मेरी भक्ति आपमें बनी रहे ॥ १० ॥

**माद्र्युवाच**

कृष्णे रताः कृष्णमनुस्मरन्ति रात्रौ च कृष्णं पुनरुत्थिता ये ।

ते भिन्नदेहाः प्रविशन्ति कृष्णे हविर्यथा मन्त्रहुतं हुताशे ॥ ११ ॥

माद्रीने कहा-

जो लोग कृष्णमें अनुरक्त हैं, वे निरन्तर कृष्णका स्मरण करते रहते हैं, रातमें (सो जानेके बाद मनके पुरीतत् नाड़ीमें चले जानेपर स्मरणकी यह

निरन्तरता नहीं रह जाती। फिर भी) जब-जब उठते हैं, तब-तब वे भगवान्‌का स्मरण करते रहते हैं। ऐसे निरन्तर निरत भगवान्‌के भक्त देहके नष्ट हो जानेपर भगवान्‌ कृष्णमें उसी तरह मिल जाते हैं, जैसे मन्त्रद्वारा प्रदत्त आहुति अग्निमें मिल जाती है ॥ ११ ॥

### द्रौपद्युवाच

कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु  
रक्षःपिशाचमनुजेष्वपि यत्न यत्न ।

जातस्य मे भवतु केशव त्वत्प्रसादात्  
त्वय्येव भक्तिरचलाऽव्यभिचारिणी च ॥ १२ ॥

द्रौपदीने कहा-

हे केशव ! कीड़े, पक्षी, पशु तथा सरककर चलनेवाले साँप आदिकी योनि और राक्षस, पिशाच एवं मनुष्य आदि जिस-जिस योनिमें मैं उत्पन्न होऊँ, उन सभी योनियोंमें आपकी कृपासे आपमें मेरी अचल और अनन्य भक्ति बनी रहे ॥ १२ ॥

### सुभद्रोवाच

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधाऽवभृथेन तुल्यः ।

दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥ १३ ॥

सुभद्राने कहा-

भगवान् श्रीकृष्ण के लिये किया गया एक बारका भी प्रणाम दस अश्वमेधयज्ञके अनुष्ठानकी समाप्तिपर किये जानेवाले अवभृथ-स्नानके बराबर (फलप्रद) है। सच पूछा जाय तो एक बार किया गया यह प्रणाम दस अश्वमेधयज्ञसे भी बढ़कर होता है; क्योंकि दस अश्वमेध करनेवाला व्यक्ति फिरसे जन्म ग्रहण करता है, किंतु भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला फिर जन्म ग्रहण नहीं करता अर्थात् मुक्त हो जाता है ॥ १३ ॥

अभिमन्युरुवाच

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण ।

गोविन्द गोविन्द रथाङ्गपाणे गोविन्द गोविन्द नमो नमस्ते ॥ १४ ॥

अभिमन्युने कहा-

हे गोविन्द ! हे गोविन्द ! हे हरे ! हे मुरारे ! हे गोविन्द ! हे गोविन्द ! हे मुकुन्द ! हे कृष्ण ! हे गोविन्द ! हे गोविन्द ! हे रथाङ्गपाणे ! हे गोविन्द ! हे गोविन्द ! आपको बार-बार नमस्कार है ॥ १४ ॥

धृष्टद्युम्न उवाच

श्रीराम नारायण वासुदेव गोविन्द वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण ।

श्रीकेशवानन्त नृसिंह विष्णो मां त्राहि संसारभुजङ्गदष्टम् ॥ १५ ॥

धृष्टद्युम्नने कहा-

हे श्रीराम ! हे नारायण ! हे वासुदेव ! हे गोविन्द ! हे वैकुण्ठ ! हे मुकुन्द ! हे कृष्ण ! हे श्रीकेशव ! हे अनन्त ! हे नृसिंह ह ! ! हे विष्णो ! संसाररूपी सर्पने मुझे डँस लिया है, आप मुझे बचाइये ॥ १५ ॥

सात्यकिरुवाच

अप्रमेय हरे विष्णो कृष्ण दामोदराच्युत ।

गोविन्दानन्त सर्वेश वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥

सात्यकिने कहा-

हे अप्रमेय ! हे हरे ! हे विष्णो ! हे कृष्ण ! हे दामोदर ! हे अच्युत ! हे गोविन्द ! हे अनन्त ! हे सर्वेश ! हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है ॥

१६ ॥

उद्धव उवाच

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते ।

तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं वाञ्छति दुर्भगः ॥ १७ ॥

उद्धवने कहा-

साक्षात् परब्रह्म वासुदेवको छोड़कर जो अन्य देवताकी उपासना करता है, वह उस प्यासेके समान है, जिसकी समझनेकी शक्ति कम है, जिसके कारण गङ्गाके तटपर रहकर भी प्यास बुझानेके लिये वह कुएँकी ओर दौड़ता है। (इन्द्र आदि देवता भगवान् श्रीकृष्णके ही अंशांश हैं और प्रकृतिको परिधिके भीतर हैं। ये प्राकृतिक सुख-शान्ति ही प्रदान कर सकते हैं, आत्मिक नहीं) ॥ १७॥

धौम्य उवाच

अपां समीपे शयनासनस्थिते दिवा च रात्रौ च यथाधिगच्छताम् ।

यद्यस्ति किञ्चित् सुकृतं कृतं मया जनार्दनस्तेन कृतेन तुष्यतु ॥ १८ ॥

धौम्यने कहा-

जलके समीपमें, शय्यापर अथवा आसनपर स्थित होकर दिन या रात्रिमें अथवा चलते-फिरते जो कुछ मैंने पुण्य अर्जित किया है, उस किये गये पुण्यसे भगवान् जनार्दन संतुष्ट हो जायँ ॥ १८ ॥

### सञ्जय उवाच

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता घोरेषु व्याघ्रादिषु वर्तमानाः ।

संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति ॥ १९ ॥

सञ्जयने कहा-

जो आर्त हैं, दुःखी हैं, शक्तिहीन हैं, भयानक व्याघ्र आदि हिसक पशुओंके मध्य पड़कर जो भयभीत हो गये हैं, वे लोग 'नारायण' शब्दका उच्चारणमात्र करके दुःखसे मुक्त होकर सुखी हो जाते हैं ॥

१९ ॥

### अक्रूर उवाच

नारायणदासदासो अहमस्मि दासस्य दासस्य च दासदासः ।

अन्यो न ईशो जगतो नराणां तस्मादहं धन्यतरोऽस्मि लोके ॥ २० ॥

अक्रूरने कहा-

नारायणके जितने दास हो चुके हैं, उन सब दासोंका मैं दासानुदास हूँ ।  
जगत् और सब मनुष्योंके एकमात्र स्वामी नारायण हैं, इनके अतिरिक्त

और कोई स्वामी नहीं है, इसलिये मैं संसारमें दूसरेकी अपेक्षा धन्य हूँ ॥  
२०॥

**विदुर उवाच**

वासुदेवस्य ये भक्ताः शान्तास्तद्गतचेतसः ।

तेषां दासस्य दासोऽहं भवेयं जन्मजन्मनि ॥ २१॥

विदुरने कहा-

भगवान् कृष्णके जो भक्त शमगुणसे सम्पन्न हैं और जिन्होंने निरन्तर अपने मनको उनमें लगा रखा है, उन भक्तोंका जो दास है, उस दासका मैं प्रत्येक जन्ममें दास बनूँ। (ऐसी मेरी अभिलाषा है।) ॥ २१ ॥

**भीष्म उवाच**

विपरीतेषु कालेषु परिक्षीणेषु बन्धुषु ।

त्वाहि मां कृपया कृष्ण शरणागतवत्सल ॥ २२॥

भीष्मने कहा- हे शरणागतवत्सल कृष्ण ! समय विपरीत है, परिवारके लोग कम रह गये हैं, (ऐसी स्थितिमें) कृपा कर आप मेरी रक्षा पाण्डवगीता एवं हंसगीतार करें ॥ २२ ॥

द्रोणाचार्य उवाच

ये ये हताश्रक्रधरेण दैत्या स्त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन ।

ते ते गता विष्णुपुरीं नरेन्द्र क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः ॥ २३ ॥

द्रोणाचार्यने कहा-

तीनों लोकोंके नाथ चक्रधारी भगवान्के द्वारा जो-जो दैत्य मारे गये, वे सभी-के-सभी भगवान्के धाम (विष्णुपुरी) में चले गये। हे राजन् ! भगवान्का क्रोध भी वरदानके समान ही होता है ॥ २३ ॥

कृपाचार्य उवाच

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे

मत्प्रार्थनीयमदनुग्रह एष एव ।

त्वद्धृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्य-

भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ॥ २४ ॥

कृपाचार्यने कहा-

हे मधु और कैटभ दैत्यका उद्धार करनेवाले भगवान् ! मैं आपके अनन्त परिचारकों (सेवकों) मेंसे किसी एक सेवकका सेवक हूँ। इस



रूपमें आप मुझे स्मरण करें तो हे लोकनाथ ! मेरे जन्म लेनेका फल मुझे प्राप्त हो जायगा, इतनी ही मेरी प्रार्थना है और इसे ही मैं आपका अनुग्रह मानता हूँ ॥ २४ ॥

अश्वत्थामोवाच

गोविन्द केशव जनार्दन वासुदेव

विश्वेश विश्व मधुसूदन विश्वरूप ।

श्रीपद्मनाभ पुरुषोत्तम देहि दास्यं

नारायणाऽच्युत नृसिंह नमो नमस्ते ॥ २५ ॥

अश्वत्थामाने कहा-

हे गोविन्द ! हे केशव ! हे जनार्दन ! हे वासुदेव ! हे विश्वेश ! हे विश्व !  
हे मधुसूदन ! हे विश्वरूप ! हे श्रीपद्मनाभ ! हे पुरुषोत्तम ! हे नारायण !  
हे अच्युत ! हे नृसिंह ! आप मुझे अपनी दासता प्रदान करें । आपको  
बार-बार नमस्कार है ॥ २५ ॥

कर्ण उवाच

नान्यं वदामि न शृणोमि न चिन्तयामि

नान्यं स्मरामि न भजामि न चाश्रयामि ।

भक्त्या त्वदीयचरणाम्बुजमन्तरेण

श्रीश्रीनिवास पुरुषोत्तम देहि दास्यम् ॥ २६ ॥

कर्णने कहा-

हे श्रीश्रीनिवास ! आपमें भक्ति होनेके कारण आपके चरणकमलको छोड़कर मैं अन्य कुछ न कहता हूँ, न सुनता हूँ, न सोचता हूँ, न किसी अन्य देवताका स्मरण करता हूँ, न भजन करता हूँ और न आश्रय ही ग्रहण करता हूँ । (इसलिये) हे पुरुषोत्तम ! आप मुझे अपनी दासता प्रदान करें ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय ।

श्रीशार्ङ्गचक्राब्जगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्रने कहा-

असीम पराक्रमसम्पन्न होनेपर भी भक्तोंके हितके लिये वामनस्वरूप धारण करनेवाले नारायणको बार-बार नमस्कार है । भगवती लक्ष्मीको वामभागमें तथा शार्ङ्ग धनुष, चक्र, कमल और गदाको धारण करनेवाले उन पुरुषोत्तम भगवान्को नमस्कार है ॥ २७ ॥

### गान्धार्युवाच

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।  
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥ २८ ॥

गान्धारीने कहा-

हे देवदेव ! आप ही मेरी माता हैं, आप ही मेरे पिता हैं, आप ही मेरे  
बन्धु तथा आप ही मेरे सखा हैं, आप ही मेरी विद्या और आप ही मेरे  
धन हैं, इस तरह आप ही मेरे सब कुछ हैं ॥ २८ ॥

### हुपद उवाच

यज्ञेशाऽच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव ।  
कृष्ण विष्णो हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥ २९ ॥

द्रुपदने कहा-

हे यज्ञेश ! हे अच्युत ! हे गोविन्द ! हे माधव ! हे अनन्त ! हे केशव !  
हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे हृषीकेश ! हे वासुदेव ! आपको मेरा नमस्कार  
है ॥ २९ ॥

जयद्रथ उवाच

नमः कृष्णाय देवाय ब्रह्मणेऽनन्तमूर्तये ।

योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गतः ॥ ३० ॥

जयद्रथने कहा-

हे अनन्त मूर्तिवाले ब्रह्मदेव भगवान् श्रीकृष्ण ! आपको नमस्कार है ।  
योगकी मूर्ति हे योगेश्वर ! आपको मेरा नमस्कार है । मैं आपकी शरणमें  
हूँ ॥ ३० ॥

विकर्ण उवाच

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।

नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ३१ ॥

विकर्णने कहा-

हे देवकीको आनन्दित करनेवाले वासुदेव श्रीकृष्ण तथा हे  
नन्दगोपकुमार गोविन्द ! आपको बार-बार नमस्कार है ॥ ३१ ॥

सोमदत्त उवाच

नमः परमकल्याण नमस्ते विश्वभावन ।

वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥ ३२ ॥

सोमदत्तने कहा-

हे परम कल्याण करनेवाले ! आपको नमस्कार है। हे विश्वभावन  
(विश्वकी उत्पत्ति और पालन करनेवाले) ! आपको नमस्कार है।  
वासुदेव, शान्तरूप तथा यदुवंशियोंके स्वामी को नमस्कार है ॥ ३२॥

विराट उवाच

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ३३ ॥

विराटने कहा-

ब्राह्मणों के हितैषी, गौ और ब्राह्मणका कल्याण करनेवाले भगवान्को  
नमस्कार है। जगत्का हित करनेवाले कृष्ण- गोविन्दको बार-बार  
नमस्कार है ॥ ३३ ॥

शल्य उवाच

अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम् ।

ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम् ॥ ३४ ॥

शल्यने कहा-

तीसीके फूलकी आभावाले, पीताम्बर धारण किये हुए, अच्युत और गोविन्द नामवाले भगवान्को जो नमस्कार करते हैं, उनको कोई भय नहीं होता ॥ ३४ ॥

बलभद्र उवाच

कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव ।  
संसासर्णवमग्नानां प्रसीद पुरुषोत्तम ॥ ३५ ॥

बलभद्रने कहा-

हे कृष्ण ! आप अत्यन्त दयालु हैं, (अतः) आप असहायोंके सहायक बन जाइये । हे पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ! संसाररूपी समुद्रमें डूबनेवालोंपर आप प्रसन्न हो जाइये ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।  
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥ ३६ ॥  
नित्यं वदामि मनुजाः स्वयमूर्ध्वबाहु-

यों मां मुकुन्द नरसिंह जनार्दनेति ।  
जीवो जपत्यनुदिनं मरणे रणे वा  
पाषाणकाष्ठसदृशाय ददाम्यभीष्टम् ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्णने (स्वयं) कहा-

'जो निरन्तर 'कृष्ण', 'कृष्ण', 'कृष्ण' कहकर मेरा स्मरण करता रहता है, उसको नरकसे मैं उसी तरह निकाल लेता हूँ, जैसे जल फोड़कर कमल निकल आता है। हे मनुष्यो ! मैं स्वयं ऊपर भुजा उठाकर सदा कहा करता हूँ कि जो जीव मुझे प्रतिदिन मरण-कालमें या रणकी स्थितिमें, उस व्यक्तिको मैं उसकी अभीष्ट वस्तु दे देता हूँ। भले ही उसका हृदय पत्थर या काठकी तरह कठोर हो' ॥ ३६-३७ ॥

ईश्वर उवाच

सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम् ।  
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति पुत्रक ॥ ३८ ॥

ईश्वरने (स्वयं) कहा-

हे पुत्र ! जो मनुष्य एक बार 'नारायण' कह देता है, वह तीन सौ कल्पपर्यन्त गङ्गा आदि सभी तीर्थोंमें नहानेका फल पा लेता है ॥ ३८ ॥

सूत उवाच

तत्रैव गङ्गा यमुना च तत्र गोदावरी सिन्धुसरस्वती च ।

सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्राच्युतोदारकथाप्रसंगः ॥ ३९ ॥

सूतजीने कहा-

जहाँ भगवान्की श्रेष्ठ कथा होती है, वहीं गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सिन्ध और सरस्वती आदि सभी तीर्थ बसते हे ॥ ३९ ॥

यम उवाच

नरके पच्यमाने तु यमेन परिभाषितम् ।

कि त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ४० ॥

यमने कहा-

नरकमें कष्ट झेलते हुए जीवसे यम कहते हैं- क्या तुमने क्लेशके नाश करनेवाले भगवान् केशवका पूजन नहीं किया ? ॥ ४० ॥

नारद उवाच

जन्मान्तरसहस्रेण तपोध्यानसमाधिना ।



नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥ ४१ ॥

नारदजीने कहा-

हजारों जन्मोंके किये हुए तप, ध्यान और समाधिके द्वारा क्षीण पापवाले मनुष्योंकी भक्ति कृष्णमें उत्पन्न होती है ॥ ४१ ॥

प्रह्लाद उवाच

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु ब्रजाम्यहम् ।

तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युताऽस्तु सदा त्वयि ॥ ४२ ॥

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।

त्वदनुस्मरणादेव हृदयान्नापसर्पतु ॥ ४३ ॥

प्रह्लादजीने कहा-

'हे स्वामिन् ! जिन जिन हजारों योनियोंमें मैं जाऊँ, उन-उन योनियोंमें हे अच्युत ! आपमें मेरी अचल भक्ति बनी रहे ।' 'विवेकरहित मनुष्योंकी रूप, रस आदि विषयोंमें जैसी अडिग प्रीति बनी रहती है, वैसी ही प्रीति आपके स्मरणमें मेरी बनी रहे । वह प्रीति आपके नामका निरन्तर स्मरण करनेसे मेरे हृदयसे कभी दूर न हो' ॥ ४२-४३ ॥

## विश्वामित्र उवाच

किं तस्य दानैः किं तीर्थैः कितपोभिः किमध्वरैः ।

यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः ॥ ४४ ॥

विश्वामित्रने कहा-

जो व्यक्ति एकतानताके साथ नित्य ही भगवान् नारायणका ध्यान करता है, उस व्यक्तिके लिये दान, तीर्थ, तप और यज्ञोंसे क्या लाभ ? (अर्थात् एकनिष्ठ ध्यानसे यज्ञ, तप आदिका फल स्वयं प्राप्त हो जाता है) ॥ ४४ ॥

## जमदग्निरुवाच

नित्योत्सवो भवेत् तेषां नित्यं नित्यं च मङ्गलम् ।

येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः ॥ ४५ ॥

जमदग्निरुवाच-

जिनके हृदयमें मङ्गलायतन भगवान् हरि विद्यमान हैं, उनके लिये सदा उत्सव है- नित्य मङ्गल है ॥ ४५ ॥

## भरद्वाज उवाच

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।

येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ ४६ ॥

भरद्वाजजीने कहा-

जिनके हृदयमें नील कमलके समान श्याम वर्णवाले जनार्दन स्थित हैं, उनको सदा लाभ ही है और सदा विजय है । उनकी पराजय कहाँ ? ॥

४६ ॥

गौतम उवाच

गोकोटिदानं ग्रहणेषु काशी प्रयागगङ्गायुतकल्पवासः ।

यज्ञायुतं मेरुसुवर्णदानं गोविन्दनामस्मरणेन तुल्यम् ॥ ४७ ॥

गौतमजीने कहा-

करोड़ गौओंका दान, ग्रहणमें काशीका स्नान, प्रयागमें गङ्गातटपर दस हजार कल्पपर्यन्त वास करना, दस हजार यज्ञ करना और मेरु पर्वतके बराबर स्वर्णका दान 'करना ये सभी 'गोविन्द' नामके एक बार स्मरणके समान हैं ॥ ४७ ॥

अत्रिरुवाच

२९ गोविन्देति सदा स्नानं गोविन्देति सदा जपः  
गोविन्देति सदा ध्यानं सदा गोविन्दकीर्तनम् ॥ ४८ ॥

त्यक्षरं परमं ब्रह्म गोविन्देति त्यक्षरं परम् ।  
तस्मादुच्चरितं येन ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ४९ ॥

अत्रिने कहा-

गोविन्दका उच्चारण सदा स्नान है, गोविन्द नामका उच्चारण ही सदा जप है और गोविन्द नामका उच्चारण ही सदा ध्यान है । गोविन्दके तीन अक्षर परम ब्रह्मरूप हैं । इसलिये जिसने गोविन्दरूप-इन तीन अक्षरोंका उच्चारण किया, वह ब्रह्ममें लीन हो जाता है' ॥ ४८-४९ ॥

शुक उवाच

अच्युतः कल्पवृक्षोऽसावनन्तः कामधेनवः ।

चिन्तामणिस्तु गोविन्दो हरेर्नाम विचिन्तयेत् ॥ ५० ॥

शुकदेवजीने कहा-

'अच्युत' नाम कल्पतरु है, 'अनन्त' नाम अनन्त कामधेनु है और 'गोविन्द' नाम चिन्तामणि है । इसलिये हरिके नामका चिन्तन करना चाहिये ॥ ५० ॥

हरिरुवाच

जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं  
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः ।  
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो  
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥ ५१ ॥

हरि (इन्द्र) ने कहा-

देवकीको आनन्दित करनेवाले इन देवकी जय हो, जय हो । यदुवंशको प्रकाशित करनेवाले कृष्णकी जय हो, जय हो । मेघके समान श्याम वर्णवाले और कोमल अङ्गोंवालेकी जय हो, जय हो । पृथ्वीके भारको उतारनेवाले मुकुन्दकी जय हो, जय हो ॥ ५१ ॥

पिप्पलायन उवाच

श्रीमन्नृसिहविभवे गरुडध्वजाय  
तापत्रयोपशमनाय भवौषधाय ।  
कृष्णाय वृश्चिकजलाग्निभुजङ्गरोग-  
क्लेशव्ययाय हरये गुरवे नमस्ते ॥ ५२ ॥

पिप्पलायनने कहा-

श्रीसे सम्बन्धित नृसिहरूप प्रभुको नमस्कार है। जिनकी ध्वजामें गरुडजी विराजमान हैं, उनको नमस्कार है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक- इन तीनों तापोंको दूर करनेवाले, संसारके औषधस्वरूप भगवान् कृष्णको नमस्कार है। बिच्छू, जल, अग्नि, साँप, रोग और क्लेशको दूर करनेवाले भगवान्को नमस्कार है। हरिरूप गुरुको नमस्कार है ॥ ५२ ॥

हविर्होत उवाच

कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपिञ्जरान्ते  
अद्दद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः ।

प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः

कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ॥ ५३ ॥

हविर्होतने कहा-

हे कृष्ण ! आपके चरण- कमलरूपी पिजड़ेमें मेरा मनरूपी राजहंस आज ही प्रवेश कर जाय; क्योंकि शरीरसे प्राण निकलते समय कण्ठ कफ, वात और पित्तसे अवरुद्ध हो जाता है, उस अवसरपर आपका स्मरण कैसे हो सकता है? ॥ ५३ ॥

विदुर उवाच

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ ५४ ॥

विदुरने कहा-

हरि का नाम ही मेरा जीवन है । कलियुग में नाम के अतिरिक्त और कोई गति है ही नहीं ॥ ५४ ॥

वसिष्ठ उवाच

कृष्णोति मङ्गलं नाम यस्य वाचा प्रवर्तते ।

भस्मीभवन्ति तस्याशु महापातककोटयः ॥ ५५ ॥

वसिष्ठने कहा-

जिसकी वाणीसे मङ्गलमय कृष्णका नाम उच्चरित होता रहता है, उसके करोड़ों महापातक शीघ्र ही जल जाते हैं ॥ ५५॥

अरुन्धत्युवाच

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।

प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ५६ ॥

अरुन्धतीने कहा-

शरणागतोंके कष्टका नाश करनेवाले गोविन्द तथा वासुदेव श्रीकृष्ण एवं परमात्मा श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है ॥ ५६ ॥

कश्यप उवाच

कृष्णानुस्मरणादेव पापसंघट्टपञ्जरम् ।

शतधा भेदमाप्नोति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥ ५७ ॥

कश्यपने कहा-

भगवान श्रीकृष्ण का प्रतिदिन स्मरण करनेसे पाप-समूहका पंजर सौ टुकड़ोंमें वैसे ही विदीर्ण हो जाता है, जैसे वज्रका मारा हुआ पर्वत ॥

५७ ॥

दुर्योधन उवाच

जानामि धर्म न च मे प्रवृत्तिर्जानामि पापं न च मे निवृत्तिः ।

केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥ ५८ ॥

बन्धस्य मम दोषेण शम्यतां मधुसूदन ।

अहं यन्त्रं भवान् यन्त्री मम दोषो न दीयताम् ॥ ५९ ॥



\* यहाँ दुर्योधनकी उक्ति पूर्णतः सिद्धान्तसम्मत नहीं है। वह अपने पापयुक्त कमौका सारा दोष परमात्मप्रभुपर ही मढ़ रहा है; परंतु पाप करनेकी प्रेरणा परमात्मासे नहीं मिलती। यह व्यक्तिका स्वयंका निर्णय है।

दुर्योधनने कहा-

'मैं धर्मको जानता हूँ, किंतु इसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। इसी तरह पापको भी जानता हूँ, किंतु उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती। हृदयमें बैठा हुआ कोई देव जैसी प्रेरणा देता है, वैसे ही करता हूँ। हे मधुसूदन ! मैं यन्त्र हूँ और आप यन्त्री (यन्त्रके प्रेरक) हैं। इसलिये यन्त्ररूप मेरे दोषसे आप शान्त हों। मुझे दोष न दें; क्योंकि यन्त्रकी सभी क्रियाएँ उसके प्रेरकके अधीन होती हैं ॥ ५८-५९ ॥

भृगुरुवाच

नामैव तव गोविन्द नाम त्वत्तः शताधिकम् ।

ददात्युच्चारणान्मुक्ति भवानष्टाङ्गयोगतः ॥ ६० ॥

भृगुने कहा-

हे गोविन्द ! आपका नाम आपसे सौ गुना बड़ा है; क्योंकि वह उच्चारणमात्रसे मुक्ति प्रदान करता है और आप अष्टाङ्गयोगकी साधनासे मुक्ति देते हैं ॥ ६० ॥

लोमश उवाच

नमामि नारायणपादपङ्कजं करोमि नारायणपूजनं सदा ।

बदामि नारायणनामनिर्मलं स्मरामि नारायणतत्त्वमव्ययम् ॥ ६१ ॥

लोमशने कहा-

मैं नारायणके चरण- कमलको नमस्कार करता रहता हूँ, नारायणका पूजन करता रहता हूँ, सदा नारायणके निर्मल नामका उच्चारण करता रहता हूँ और अविनाशी नारायणरूपी तत्त्वका स्मरण करता रहता हूँ ॥ ६१ ॥

शौनक उवाच

स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्न जायते ।

पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥ ६२ ॥

शौनकने कहा-

जिनका स्मरण करनेपर मनुष्य समस्त कल्याणोंका पात्र हो जाता है, मैं जन्मरहित उन नित्य पुरुष हरिकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ६२ ॥

गर्ग उवाच

नारायणेति मन्त्रोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी ।

तथापि नरके घोरे पतन्तीत्यद्भुतं महत् ॥ ६३ ॥

गर्गजीने कहा- '

नारायण' यह मन्त्र विद्यमान है और वाणी वशमें है, इसके बाद भी मनुष्य घोर नरकमें पड़ते हैं, यह बहुत बड़ा आश्चर्य है ॥ ६३ ॥

दाल्भ्य उवाच

कि तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दने ।

नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ ६४ ॥

दाल्भ्यने कहा-

जिस व्यक्तिकी भगवान् जनार्दनमें भक्ति हो गयी है, उसको बहुत-से मन्त्रोंसे क्या प्रयोजन है; क्योंकि 'नमो नारायणाय' यही मन्त्र सभी प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाला है ॥ ६४ ॥

वैशम्पायन उवाच

यत्न योगेश्वरः कृष्णो यत्न पार्थो धनुर्धरः ।

तत्न श्रीर्विजयो भूतिर्भुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ६५ ॥

वैशम्पायनने कहा-

जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धारी अर्जुन हैं, वहाँ ही श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है-ऐसा मेरा मत है ॥ ६५ ॥

अग्निरुवाच

हरिहरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ।

अनिच्छ्यापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥ ६६ ॥

अग्निने कहा-

ईर्ष्या आदि दोषोंसे ग्रस्त चित्तोंके द्वारा भी स्मरण किये गये भगवान् हरि पापोंको वैसे ही हर लेते हैं, जैसे अनिच्छासे भी संस्पृष्ट (स्पर्श की गयी) अग्नि जला ही देती है ॥ ६६ ॥

पराशर उवाच

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।

बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥ ६७॥

पराशरने कहा-

जिस व्यक्तिने 'हरि' इन दो अक्षरोंका एक बार भी उच्चारण कर लिया,  
उसने निश्चय ही मोक्ष प्राप्तिके लिये कमर कस ली ॥ ६७ ॥

पुलस्त्य उवाच

हे जिल्हे रससारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये ।

नारायणाख्यपीयूषं पिब जिल्ले निरन्तरम् ॥ ६८ ॥

पुलस्त्यने कहा-

हे रसने ! तुम सर्वदा मीठे रसकी चाह करनेवाली तथा रसके  
सारतत्त्वको जाननेवाली हो, अतः हे जिल्हे ! 'नारायण' नामरूपी  
अमृत-रसका तुम निरन्तर पान किया कर ॥ ६८ ॥

व्यास उवाच

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।

नास्ति वेदात्परं शास्त्रं न देवः केशवात्परः ॥ ६९॥

व्यासजीने कहा-

मैं इस सत्यको बार- बार कहता हूँ कि वेदसे बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है  
और केशवसे बढ़कर कोई देवता नहीं है ॥ ६९ ॥

धन्वन्तरिरुवाच

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।

नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ७० ॥

धन्वन्तरिने कहा-

अच्युत, अनन्त और गोविन्द-ये तीनों नाम औषधिका फल देते हैं।  
इनका उच्चारण करनेसे सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, यह बात मैं सत्य-  
सत्य कहता हूँ ॥ ७० ॥

मार्कण्डेय उवाच

स्वर्गदं मोक्षदं देवं सुखदं जगतो गुरुम् ।

कथं मुहूर्तमपि तं वासुदेवं न चिन्तयेत् ॥ ७१ ॥

मार्कण्डेयने कहा-

भगवान वासुदेव स्वर्ग, मोक्ष और सुखको देनेवाले तथा जगत्के गुरु हैं। उनका क्षणमात्र भी चिन्तन क्यों न किया जाय ? ॥ ७१ ॥

अगस्त्य उवाच

निमिषं निमिषार्धं वा प्राणिनां विष्णुचिन्तनम् ।

तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं प्रयागं नैमिषं वनम् ॥ ७२ ॥

अगस्त्यजीने कहा-

प्राणियोंके द्वारा पलभर या आधा पल भी जहाँ विष्णुका चिन्तन होता है, वहीं कुरुक्षेत्र, प्रयाग तथा नैमिषारण्य है ॥ ७२ ॥

वामदेव उवाच

निमिषं निमिषार्धं वा प्राणिनां विष्णुचिन्तनम् ।

कल्पकोटिसहस्राणि लभते वाञ्छितं फलम् ॥ ७३ ॥

वामदेवजीने कहा-

प्राणियोंके द्वारा पलभर या आधा पल भी यदि विष्णुका चिन्तन किया जाय तो उससे करोड़-करोड़ कल्पतक वाञ्छित फल प्राप्त होता रहता है ॥ ७३ ॥

शुक उवाच

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।

इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ ७४ ॥

शुकदेवजीने कहा-

समस्त शास्त्रोंका आलोडन कर और बार-बार विचार करनेपर इस एक बातकी सिद्धि हुई है कि नारायण ही सदा ध्येय हैं, इनका निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिये ॥ ७४ ॥

श्रीमहादेव उवाच

शरीरे जर्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे ।

औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः ॥ ७५ ॥

श्रीमहादेवजीने कहा-

शरीरके जीर्ण हो जानेपर और रोगोंके घेर लेनेपर गङ्गाजल ही औषधि है और नारायण ही वैद्य हैं ॥ ७५ ॥

शौनक उवाच



भोजने छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः ।

योऽसौ विश्वम्भरो देवः स किं भक्तानुपेक्षते ॥ ७६ ॥

शौनकजीने कहा-

विष्णुके भक्त जो भोजन और आच्छादनकी चिन्ता करते हैं, वह व्यर्थ है; क्योंकि जो संसारका पालन कर रहा है, वह भक्तोंकी उपेक्षा कैसे करेगा ? ॥ ७६ ॥

सनत्कुमार उवाच

यस्य हस्ते गदा चक्रं गरुडो यस्य वाहनम् ।

शङ्खचक्रगदापद्मी स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ७७ ॥

सनत्कुमारजीने कहा-

जिनके हाथमें गदा और चक्र है तथा गरुड जिनका वाहन है, शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण करनेवाले वे विष्णु मुझपर प्रसन्न हों ॥ ७७ ॥

एवं ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।

कीर्तयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं विभुम् ॥ ७८ ॥

ब्रह्मा आदि देवता तथा ऋषि, तपस्वी इस तरह देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान नारायणका कीर्तन किया करते हैं ॥ ७८ ॥

**इदं पवित्रमायुष्यं पुण्यं पापप्रणाशनम् ।**

**दुःस्वप्ननाशनं स्तोत्रं पाण्डवैः परिकीर्तितम् ॥ ७९ ॥**

भट्ट स्तोत्र पवित्र, आयुको बढ़ानेवाला, पुण्यप्रद और पापका नाश करनेवाला है। इससे दुःस्वप्न भी नष्ट हो जाता है। इस स्तोत्रको पाण्डवोंने कहा है ॥ ७९ ॥

**यः पठेत् प्रातरुत्थाय शुचिस्तद्रतमानसः ।**

**गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥ ८० ॥**

**तत्फलं समवाप्नोति यः पठेदिति संस्तवम् ।**

**सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ८१ ॥**

'जो व्यक्ति प्रातः काल उठकर तथा पवित्र होकर और मन लगाकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह अच्छी प्रकार दानमें दी हुई लाख गौओंका फल प्राप्त करता है। इस स्तोत्रके पाठसे सभी पापोंसे छुटकारा मिल

जाता है और पाठ करनेवाला विष्णुलोकको प्राप्त करता है' ॥ ८०-८१ ॥

गङ्गा गीता च गायत्री गोविन्दो गरुडध्वजः ।

चतुर्गकारसंयुक्तः पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ८२ ॥

गङ्गा, गीता, गायत्री और गरुडध्वज गोविन्द-इन चार गकारोंका जो उच्चारण करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् वह मुक्त हो जाता है ॥ ८२ ॥

गीतां यः पठते नित्यं श्लोकार्थं श्लोकमेव च ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ८३ ॥

॥ इति पाण्डवगीता समाप्ता ॥

जो व्यक्ति नित्य (इस पाण्डव) गीताका पाठ करता है अथवा (इसके) एक श्लोक या आधे श्लोकका भी पाठ करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त करता है ॥ ८३ ॥

॥ इस प्रकार पाण्डवगीता समाप्त हुई ॥



# हंसगीता

युधिष्ठिर उवाच

सत्यं दमं क्षमां प्रज्ञां प्रशंसन्ति पितामह ।

विद्वांसो मनुजा लोके कथमेतन्मतं तव ॥ १ ॥

युधिष्ठिरने पूछा-

पितामह ! संसारमें बहुत- से विद्वान् सत्य, इन्द्रिय-संयम, क्षमा और प्रज्ञा (उत्तम बुद्धि) की प्रशंसा करते हैं। इस विषयमें आपका कैसा मत है? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच

अत्र ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।

साध्यानामिह संवादं हंसस्य च युधिष्ठिर ॥ २ ॥

भीष्मजीने कहा-

युधिष्ठिर ! इस विषयमें साध्यगणोंका हंसके साथ जो संवाद हुआ था, वही प्राचीन इतिहास मैं तुम्हें सुना रहा हूँ ॥ २ ॥

हंसो भूत्वाथ सौवर्णस्त्वजो नित्यः प्रजापतिः ।

स वै पर्येति लोकांस्त्रीनथ साध्यानुपागमत् ॥ ३ ॥

एक समय नित्य अजन्मा प्रजापति सुवर्णमय हंसका रूप धारण करके तीनों लोकोंमें विचर रहे थे । घूमते-घामते वे साध्यगणोंके पास जा पहुँचे ॥ ३ ॥

साध्या ऊचुः शकुने वयं स्म देवा वै साध्यास्त्वामनुयुक्ष्महे ।

पृच्छामस्त्वां मोक्षधर्मं भवांश्च किल मोक्षवित् ॥ ४ ॥

उस समय साध्योंने कहा- हंस ! हमलोग साध्य देवता हैं और आपसे मोक्षधर्मके विषयमें प्रश्न करना चाहते हैं; क्योंकि आप मोक्ष-तत्त्वके ज्ञाता हैं, यह बात सर्वदा प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥ -

श्रुतोऽसि नः पण्डितो धीरवादी साधुशब्दश्चरते ते पतलिन् ।

कि मन्यसे श्रेष्ठतमं द्विज त्वं कस्मिन् मनस्ते रमते महात्मन् ॥ ५ ॥

महात्मन् ! हमने सुना है कि आप पण्डित और धीर वक्ता हैं। पतलिन् ! आपकी उत्तम वाणीका सर्वत्र प्रचार है। पक्षिप्रवर ! आपके मतमें सर्वश्रेष्ठ वस्तु क्या है? आपका मन किसमें रमता है? ॥ ५ ॥

तत्रः कार्य पक्षिवर प्रशाधि यत् कार्याणां मन्यसे श्रेष्ठमेकम् ।

यत् कृत्वा वै पुरुषः सर्वबन्धै विमुच्यते विहगेन्द्रेह शीघ्रम् ॥ ६ ॥

पक्षिराज ! खगश्रेष्ठ ! समस्त कार्योंमेंसे जिस एक कार्यको आप सबसे उत्तम समझते हों तथा जिसके करनेसे जीवको सब प्रकारके बन्धनोंसे शीघ्र छुटकारा मिल सके, उसीका हमें उपदेश कीजिये ॥ ६ ॥

हंस उवाच

इदं कार्यममृताशाः शृणोमि तपो दमः सत्यमात्माभिगुप्तिः ।

ग्रन्थीन् विमुच्य हृदयस्य सर्वान् प्रियाप्रिये स्वं वशमानयीत ॥ ७ ॥

हंसने कहा-

अमृतभोजी देवताओ ! मैं तो सुनता हूँ कि तप, इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण और मनोनिग्रह आदि कार्य ही सबसे उत्तम हैं। हृदयकी

सारी गाँठें खोलकर प्रिय और अप्रियको अपने वशमें करे अर्थात् उनके लिये हर्ष एवं विषाद न करे ॥ ७॥

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत ।

ययास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेषतीं पापलोक्याम् ॥ ८ ॥

किसीके मर्ममें आघात न पहुँचाये । दूसरोंसे निष्ठुर वृत्तन न बोले । किसी नीच मनुष्यसे अध्यात्मशास्त्रका उपदेश न ग्रहण करे मनुष्यसे अध्यात्मशास्त्रका उपदेश न ग्रहण करे तथा जिसे सुनकर दूसरोंको उद्वेग हो, ऐसी नरकमें डालनेवाली अमङ्गलमयी बात भी मुँहसे न निकाले ॥ ८ ॥

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।

परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु ॥ ९ ॥

वचनरूपी बाण जब मुँहसे निकल पड़ते हैं, तब उनके द्वारा बीधा गया मनुष्य रात-दिन शोकमें डूबा रहता है; क्योंकि वे दूसरोंके मर्मपर आघात पहुँचाते हैं, इसलिये विद्वान् पुरुषको किसी दूसरे मनुष्यपर वाग्बाणका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥



परश्चेदेनमतिवादबाणै भृशं विध्येच्छम एवेह कार्यः ।

संरोष्यमाणः प्रतिहृष्यते यः स आदत्ते सुकृतं वै परस्य ॥ १० ॥

दूसरा कोई भी यदि इस विद्वान् पुरुषको कटुवचनरूपी बाणोंसे बहुत अधिक चोट पहुँचाये तो भी उसे शान्त ही रहना चाहिये । जो दूसरोंके क्रोध करनेपर भी स्वयं बदलेमें प्रसन्न ही रहता है, वह उसके पुण्यको ग्रहण कर लेता है ॥ १० ॥

क्षेपायमाणमभिषङ्गव्यलीकं निगृह्णाति ज्वलितं यश्च मन्युम् ।

अदुष्टचेता मुदितोऽनसूयुः स आदत्ते सुकृतं वै परेषाम् ॥ ११ ॥

जो जगत्में निन्दा करानेवाले और आवेशमें डालनेके कारण अप्रिय प्रतीत होनेवाले प्रज्वलित क्रोधको रोक लेता है, चित्तमें कोई विकार या दोष नहीं आने देता, प्रसन्न रहता और दूसरोंके दोष नहीं देखता है, वह पुरुष अपने प्रति शत्रुभाव रखनेवाले लोगोंके पुण्य ले लेता है ॥ ११ ॥

आक्लेश्यमानो न वदामि किञ्चित् क्षमाम्यहं ताड्यमानश्च नित्यम् ।

श्रेष्ठं होतद् यत्क्षमामाहुरार्याः सत्यं तथैवार्जवमानृशंस्यम् ॥ १२ ॥

मुझे कोई गाली दे तो भी बदलेमें मैं कुछ नहीं कहता हूँ । कोई मार दे तो उसे सदा क्षमा ही करता हूँ; क्योंकि श्रेष्ठ जन क्षमा, सत्य, सरलता और दयाको ही उत्तम बताते हैं ॥ १२ ॥

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः ।

दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम् ॥ १३ ॥

वेदाध्ययनका सार है सत्यभाषण, सत्यभाषणका सार है इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयमका फल है मोक्ष । यही सम्पूर्ण शास्त्रोंका उपदेश है ॥ १३ ॥

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं विधित्सावेगमुदरोपस्थवेगम् ।

एतान् वेगान् यो विषहेदुदीर्णं स्तं मन्येऽहं ब्राह्मणं वै मुनि च ॥ १४ ॥  
जो वाणीका वेग, मन और क्रोधका वेग, तृष्णाका वेग तथा पेट और जननेन्द्रियका वेग-इन सब प्रचण्ड वेगोंको सह लेता है, उसीको मैं ब्रह्मवेत्ता और मुनि मानता हूँ ॥ १४ ॥

अक्रोधनः कुध्यतां वै विशिष्ट स्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः ।

अमानुषान्मानुषो वै विशिष्ट स्तथाज्ञानाज्ञानविद् वै विशिष्टः ॥ १५ ॥  
क्रोधी मनुष्योंसे क्रोध न करनेवाला मनुष्य श्रेष्ठ है। असहनशीलसे  
सहनशील पुरुष बड़ा है। मनुष्येतर प्राणियोंसे मनुष्य ही बढ़कर है तथा  
अज्ञानीसे ज्ञानवान् ही श्रेष्ठ है ॥ १५॥

आकुश्यमानो नाकुश्येन्मन्युरेनं तितिक्षतः ।

आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥ १६ ॥

जो दूसरेके द्वारा गाली दी जानेपर भी बदलेमें उसे गाली नहीं देता, उस  
क्षमाशील मनुष्यका दबा हुआ क्रोध ही उस गाली देनेवालेको भस्म कर  
देता है और उसके पुण्यको भी ले लेता है ॥ १६ ॥

यो नात्युक्तः प्राह रुक्षं प्रियं वा

यो वा हतो न प्रतिहन्ति धैर्यात् ।

पापं च यो नेच्छति तस्य हन्तु-

स्तस्येह देवाः स्पृहयन्ति नित्यम् ॥ १७ ॥

जो दूसरोंके द्वारा अपने लिये कड़वी बात कही जानेपर भी उसके प्रति  
कठोर या प्रिय कुछ भी नहीं कहता तथा किसीके द्वारा चोट खाकर भी  
धैर्यके कारण बदलेमें न तो मारनेवालेको मारता है और न उसकी बुराई

ही चाहता है, उस महात्मासे मिलनेके लिये देवता भी सदा लालायित रहते हैं ॥ १७॥

पापीयसः क्षमेतैव श्रेयसः सदृशस्य च ।

विमानितो हतोत्कृष्ट एवं सिद्धिं गमिष्यति ॥ १८॥

पाप करनेवाला अपराधी अवस्थामें अपने- से बड़ा हो या बराबर, उसके द्वारा अपमानित होकर, मार खाकर और गाली सुनकर भी उसे क्षमा ही कर देना चाहिये । ऐसा करनेवाला पुरुष परम सिद्धिको प्राप्त होगा ॥

१८ ॥

सदाहमार्यान्निभृतोऽप्युपासे न मे विधित्सोत्सहते न रोषः ।

न वाप्यहं लिप्समानः परैमि न चैव किंचिद् विषयेण यामि ॥ १९ ॥

यद्यपि मैं सब प्रकारसे परिपूर्ण हूँ (मुझे कुछ जानना या पाना शेष नहीं है) तो भी मैं श्रेष्ठ पुरुषोंकी उपासना (सत्सङ्ग) करता रहता हूँ । मुझपर न तृष्णाका वश चलता है न रोषका । मैं कुछ पानेके लोभसे धर्मका उल्लङ्घन नहीं करता और न विषयोंकी प्राप्तिके लिये ही कहीं आता-जाता हूँ ॥ १९ ॥

नाहं शप्तः प्रतिशपामि कंचिद् दमं द्वारं ह्यमृतस्येह वेद्मि ।

गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीमि न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किञ्चित् ॥ २० ॥

कोई मुझे शाप दे दे तो भी मैं बदलेमें उसे शाप नहीं देता ।

इन्द्रियसंयमको ही मोक्षका द्वार मानता हूँ । इस समय तुम लोगोंको एक बहुत गुप्त बात बता रहा हूँ, सुनो । मनुष्ययोनिसे बढ़कर कोई उत्तम योनि नहीं है ॥ २० ॥

निर्मुच्यमानः पापेभ्यो घनेभ्य इव चन्द्रमाः ।

विरजाः कालमाकाङ्क्षन् धीरो धैर्येण सिद्ध्यति ॥ २१ ॥

जिस प्रकार चन्द्रमा बादलोंके ओटसे निकलनेपर अपनी प्रभासे प्रकाशित हो उठता है, उसी प्रकार पापोंसे मुक्त हुआ निर्मल अन्तःकरणवाला धीर पुरुष धैर्यपूर्वक कालकी प्रतीक्षा करता हुआ सिद्धिको प्राप्त हो जाता है ॥ २१ ॥

यः सर्वेषां भवति ह्यर्चनीय उत्सैधनस्तम्भ इवाभिजातः ।

यस्मै वाचं सुप्रसन्ना वदन्ति स वै देवान् गच्छति संयतात्मा ॥ २२ ॥

जो अपने मनको वशमें रखनेवाला विद्वान पुरुष ऊँचे उठानेवाले स्वम्भेकी भाँति उच्चकुलमें उत्पन्न हुआ सबके लिये आदरके योग्य हो

जाता है तथा जिसके प्रति सब लोग प्रसन्नतापूर्वक मधुर वचन बोलते हैं,  
वह मनुष्य देवभावको प्राप्त हो जाता है ॥ २२ ॥

तथा वक्तुमिच्छन्ति कल्याणान् पुरुषे गुणान् ।

यथैषां वक्तुमिच्छन्ति नैर्गुण्यमनुयुञ्जकाः ॥ २३ ॥

किसीसे ईर्ष्या रखनेवाले मनुष्य जिस तरह उसके दोषोंका वर्णन करना  
चाहते हैं, उस प्रकार उसके कल्याणमय गुणोंका बखान करना नहीं  
चाहते हैं ॥ २३ ॥

यस्य वाङ्मनसी गुप्ते सम्यक् प्रणिहिते सदा ।

वेदास्तपश्च त्यागश्च स इदं सर्वमाप्नुयात् ॥ २४ ॥

जिसकी वाणी और मन सुरक्षित होकर सदा सुब प्रकारसे परमात्मामें  
लगे रहते हैं, वह वेदाध्ययन, तप और त्याग- इन सबके फलको पा  
लेता है ॥ २४ ॥

आक्रोशनविमानाभ्यां नाबुधान् बोधयेद् बुधः ।

तस्मान्न वर्धयेदन्यं न चात्मानं विहिसयेत् ॥ २५ ॥

अतः समझदार मनुष्यको चाहिये कि वह कटुवचन कहने या अपमान करनेवाले अज्ञानियोंको उनके उक्त दोष बताकर समझानेका प्रयत्न न करे। उसके सामने दूसरेको बढ़ावा न दे तथा उसपर आक्षेप करके उसके द्वारा अपनी हिंसा न कराये ॥ २५ ॥

अमृतस्येव संतृप्येदवमानस्य पण्डितः ।

सुखं ह्यवमतः शेते योऽवमन्ता स नश्यति ॥ २६ ॥

विद्वान्को चाहिये कि वह अपमान पाकर अमृत पीनेकी भाँति संतुष्ट हो; क्योंकि अपमानित पुरुष तो सुखसे सोता है, किंतु अपमान करनेवालेका नाश हो जाता है ॥ २६ ॥

यत् क्रोधनो यजति यद् ददाति यद् वा तपस्तप्यति यज्जुहोति ।

वैवस्वतस्तद्धरतेऽस्य सर्वं मोघः श्रमो भवति हि क्रोधनस्य ॥ २७ ॥

क्रोधी मनुष्य जो यज्ञ करता है, दान देता है, तप करता है अथवा जो हवन करता है, उसके उन सब कर्मोंके फलको यमराज हर लेते हैं।

क्रोध करनेवालेका वह किया हुआ सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है ॥ २७ ॥

चत्वारि यस्य द्वाराणि सुगुप्तान्यमरोत्तमाः ।

उपस्थमुदरं हस्तौ वाक् चतुर्थी स धर्मवित् ॥ २८ ॥

देवेश्वरो ! जिस पुरुषके उपस्थ, उदर, दोनों हाथ और वाणी- ये चारों  
द्वार सुरक्षित होते हैं, वही धर्मज्ञ है ॥ २८ ॥

सत्यं दमं ह्यार्जवमानृशंस्यं

धृति तितिक्षामतिसेवमानः ।

स्वाध्यायनित्योऽस्पृहयन् परेषा-

मेकान्तशाल्यूर्ध्वगतिर्भवेत् सः ॥ २९ ॥

जो सत्य, इन्द्रिय-संयम, सरलता, दया, धैर्य और क्षमाका अधिक सेवन  
करता है, सदा स्वाध्यायमें लगा रहता है, दूसरेको वस्तु नहीं लेना  
चाहता तथा एकान्तमें निवास करता है, वह ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होता है  
॥ २९ ॥

सर्वाश्चैनाननुचरन् वत्सवच्चतुरः स्तनान् ।

न पावनतमं किञ्चित् सत्यादध्यगमं क्वचित् ॥ ३० ॥



जैसे बछड़ा अपनी माताके चारों स्तनोंका पान करता है, उसी प्रकार मनुष्यको उपर्युक्त सभी सद्गुणोंका सेवन करना चाहिये । मैंने अबतक सत्यसे बढ़कर परम पावन वस्तु कहीं किसीको नहीं समझा है ॥ ३० ॥

आचक्षेऽहं मनुष्येभ्यो देवेभ्यः प्रतिसंचरन् ।

सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥ ३१ ॥

मैं चारों ओर घूमकर मनुष्यों और देवताओंसे कहा करता हूँ कि जैसे जहाज समुद्रसे पार होनेका साधन है, उसी प्रकार सत्य ही स्वर्गलोकमें पहुँचनेकी सीढ़ी है ॥ ३१ ॥

यादृशैः संनिवसति यादृशांश्चोपसेवते ।

यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः ॥ ३२ ॥

पुरुष जैसे लोगोंके साथ रहता है, जैसे मनुष्योंका सेवन करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही होता है ॥ ३२ ॥

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव ।

वासो यथा रंगवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥ ३३ ॥

जैसे वस्त्र जिस रंगमें रंगा जाय, वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोरका सेवन करता है तो वह उन्हीं जैसा हो जाता है अर्थात् उसपर उन्हींका रंग चढ़ जाता है ॥ ३३ ॥

सदा देवाः साधुभिः संवदन्ते न मानुषं विषयं यान्ति द्रष्टुम् ।

नेन्दुः समः स्यादसमो हि वायु रुच्चावचं विषयं यः स वेद ॥ ३४ ॥

देवतालोग सदा सत्पुरुषोंका सङ्ग- उन्हींके साथ वार्तालाप करते हैं; इसीलिये वे मनुष्योंके क्षणभङ्गर भोगोंकी ओर देखने भी नहीं जाते । जो विभिन्न विषयोंके नश्वर स्वभावको ठीक- ठीक जानता है, उसकी समानता न चन्द्रमा कर सकते हैं न वायु ॥ ३४ ॥

अदुष्टं वर्तमाने तु हृदयान्तरपूरुषे ।

तेनैव देवाः प्रीयन्ते सतां मार्गस्थितेन वै ॥ ३५ ॥

हृदयगुफामें रहनेवाला अन्तर्यामी आत्मा जब दोषभावसे रहित हो जाता है, उस अवस्थामें उसका साक्षात्कार करनेवाला पुरुष सन्मार्गगामी समझा जाता है । उसकी इस स्थितिसे ही देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ३५ ॥

शिश्रोदरे ये निरताः सदैव स्तेना नरा वाक्पुरुषाश्च नित्यम् ।

अपेतदोषानपि तान् विदित्वा दूराद् देवाः सम्परिवर्जयन्ति ॥ ३६ ॥

कितु जो सदा पेट पालने और उपस्थ- इन्द्रियोंके भोग भोगनेमें ही लगे रहते हैं तथा जो चोरी करने एवं सदा कठोर वचन बोलनेवाले हैं, वे यदि प्रायश्चित्त आदिके द्वारा उक्त कर्मोंके दोषसे छूट जाय तो भी देवतालोग उन्हें पहचानकर दूरसे ही त्याग देते हैं ॥ ३६ ॥

न वै देवा हीनसत्त्वेन तोष्याः सर्वाशिना दुष्कृतकर्मणा वा ।

सत्यव्रता ये तु नराः कृतज्ञा धर्मे रतास्तैः सह सम्भजन्ते ॥ ३७ ॥

सत्त्वगुणसे रहित और सब कुछ भक्षण करनेवाले पापाचारी मनुष्य देवताओंको संतुष्ट नहीं कर सकते । जो मनुष्य नियमपूर्वक सत्य बोलनेवाले, कृतज्ञ और धर्मपरायण हैं, उन्हींके साथ देवता स्नेह-सम्बन्ध स्थापित करते हैं ॥ ३७ ॥

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम् ।

प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥ ३८ ॥

व्यर्थ बोलनेकी अपेक्षा मौन रहना अच्छा बताया गया है, (यह वाणीकी प्रथम विशेषता है) सत्य बोलना वाणीकी दूसरी विशेषता है, प्रिय बोलना वाणीकी तीसरी विशेषता है। धर्मसम्मत बोलना यह वाणीकी चौथी विशेषता है (इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है) ॥ ३८ ॥

**साध्या ऊचुः**

**केनायमावृतो लोकः केन वा न प्रकाशते ।**

**केन त्यजति मित्राणि केन स्वर्ग न गच्छति ॥ ३९ ॥**

साध्योंने पूछा-

हंस ! इस जगत्को किसने आवृत कर रखा है? किस कारणसे उसका स्वरूप प्रकाशित नहीं होता है? मनुष्य किस हेतुसे मित्रोंका त्याग करता है? और किस दोषसे वह स्वर्गमें नहीं जाने पाता ? ॥ ३९ ॥

**हंस उवाच**

**अज्ञानेनावृतो लोको मात्सर्यान्न प्रकाशते ।**

**लोभात् त्यजति मित्राणि संगत् स्वर्ग न गच्छति ॥ ४० ॥**

हंसने कहा-

देवताओ ! अज्ञानने इस लोकको आवृत कर रखा है । आपसमें डाह होनेके कारण इसका स्वरूप प्रकाशित नहीं होता । मनुष्य लोभसे मित्रोंका त्याग करता है और आसक्तिदोषके कारण वह स्वर्गमें नहीं जाने पाता ॥ ४० ॥

साध्या ऊचुः

कः स्विदेको रमते ब्राह्मणानां कः स्विदेको बहुभिर्जोषमास्ते ।  
कः स्विदेको बलवान् दुर्बलोऽपि कः स्विदेषां कलहं नान्ववैति ॥ ४१ ॥  
साध्योंने पूछा-

हंस ! ब्राह्मणोंमें कौन एकमात्र सुखका अनुभव करता है? वह कौन ऐसा एक मनुष्य है, जो बहुतोंके साथ रहकर भी चुप रहता है? वह कौन एक मनुष्य है, जो दुर्बल होनेपर भी बलवान् है तथा इनमें कौन ऐसा है, जो किसीके साथ कलह नहीं करता ? ॥ ४१ ॥

हंस उवाच

प्राज्ञ एको रमते ब्राह्मणानां प्राज्ञश्चैको बहुभिर्जीषमास्ते ।  
प्राज्ञ एको बलवान् दुर्बलोऽपि प्राज्ञ एषां कलहं नान्ववैति ॥ ४२ ॥

हंसने कहा-

देवताओ ! ब्राह्मणोंमें जो ज्ञानी है, एकमात्र वही परम सुखका अनुभव करता है। ज्ञानी ही बहुतोंके साथ रहकर भी मौन रहता है। एकमात्र ज्ञानी दुर्बल होनेपर भी बलवान् है और इनमें ज्ञानी ही किसीके साथ कलह नहीं करता है ॥ ४२ ॥

साध्या ऊचुः

कि ब्राह्मणानां देवत्वं किं च साधुत्वमुच्यते ।

असाधुत्वं च किं तेषां किमेषां मानुषं मतम् ॥ ४३ ॥

साध्योंने पूछा-

हंस ब्राह्मणोंका देवत्व क्या है? उनमें साधुता क्या बतायी जाती है? उनके भीतर असाधुता और मनुष्यता क्या मानी गयी है ? ॥ ४३ ॥

हंस उवाच

स्वाध्याय एषां देवत्वं व्रतं साधुत्वमुच्यते ।

असाधुत्वं परीवादो मृत्युर्मानुष्यमुच्यते ॥ ४४ ॥

हंसने कहा-

साध्यगण ! वेद-शास्त्रोंका स्वाध्याय ही ब्राह्मणोंका देवत्व है। उत्तम  
व्रतोंका पालन करना ही उनमें साधुता बतायी जाती है। दूसरोंकी निन्दा  
करना ही उनकी असाधुता है और मृत्युको प्राप्त होना ही उनकी  
मनुष्यता बतायी गयी है ॥ ४४ ॥

**भीष्म उवाच**

**इत्युक्त्वा परमो देव भगवान् नित्य अव्ययः ।**

**साध्यैर्देवगणैः सार्धं दिवमेवारुरोह सः ॥ ४५ ॥**

भीष्मजी कहते हैं-

युधिष्ठिर ! ऐसा कहकर नित्य अविनाशी परमदेव भगवान् ब्रह्मा साध्य  
देवताओंके साथ ही ऊपर स्वर्गलोककी ओर चल दिये ॥ ४५ ॥

**एतद् यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वर्गाय च ध्रुवम् ।**

**दर्शितं देवदेवेन परमेणाव्ययेन च ॥ ४६ ॥**

सर्वश्रेष्ठ अविनाशी देवाधिदेव ब्रह्माजीके द्वारा प्रकाशमें लाया हुआ यह  
पुण्यमय तत्त्वज्ञान यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है तथा यह  
स्वर्गलोककी प्राप्ति का निश्चित साधन है ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि हंसगीता समाप्ता ।  
इस प्रकार श्रीमहाभारत शान्तिपर्वके अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्वमें हंसगीता  
समाप्त हुई ।